प्रथम परिच्छेद Chapter-1

"गुजरात की ज्ञानमार्गी धारा की पृष्ठभूमि"

भारतीय सन्त परम्परा की एक अभिन्न कड़ी :

गुजरात के सन्त-कवियों की हिन्दी-वाणी का अनुशीलन करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस परम्परा का मूल ऋग्वेद, अथर्ववेद, बृहदारण्यक, छान्दोग्य, कठोपनिषद् आदि उपनिषदों तथा जैनमुनि रामसींग के पाहुड़-दूहा, सरहपाद एवं कण्हपाद के बौद्ध-दूहा, नाथ अवधूतों, रामानन्द, कबीर, नामदेव तथा सूफी सन्तों की विशाल निर्गुण परम्परा में निहित है। इस रूप में गुजरात के सन्तों की ज्ञानमार्गीधारा, जो पंद्रहवीं शती से आज तक अनवरत गति से विकसित होती रही है-भारतीय सन्त परम्परा की ही एक अविच्छेद्य एवं अभिन्न कड़ी है। इसके मूल में जहाँ एक ओर वेद और उपनिषदों की संहित सम्पदा है, वहाँ अन्यत्र उत्तर तथा दक्षिण भारत से निष्पन्न स्वतन्त्र पथ का निर्देश करने वाली सन्तों की भावधारा भी है। मध्ययुग में प्रचलित जिन दो विचार धाराओं के दर्शन होते हैं, वे इस प्रकार हैं :

१. प्राचीन प्रणालिकाओं से आबद्ध सुधारवादी भावधारा।

२. स्वतन्त्र पथ का निर्देश करने वाली सन्तों की भावधारा।

गुजरात के सन्तों की भावधारा उस पंथ का प्रवर्तन करने वाली स्वच्छन्द विचार-सरणि थी, जिसने युग की जर्जर परम्पराओं पर सदैव प्रहार किये और सत्य के सन्धान में आत्मा का दीप जलाकर जो निरन्तर आगे बढ़ती रही। संक्षेप में यह भावधारा नितान्त असाम्प्रदायिक, सामंजस्यवादी एवं सत्य की आत्मा से फूट पड़ने वाली एक किरण है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

गुजरात की ज्ञानमार्गी धारा के उद्भव एवं विकास में जिन राजनीतिक परिस्थितियों ने योग दिया उन्हें हम चार युगों में विभक्त कर सकते हैं :

१. हिन्दू-शासन अथवा सोलंकी - वाघेला युग
२. मुसलमान-युग अथवा सूबेदारी शासन-प्रथा
३. शान्तिकाल अथवा केन्द्रीय प्रशासन
४. संक्रान्ति-काल अर्थात् राजनीतिक अव्यवस्था और अशान्ति का काल ।

१. हिन्दू-शासन :

सोलंकी और वाघेलायुगीन अपभ्रंशोत्तर गुजराती साहित्य का काल शान्ति, समृद्धि और वाणिज्य-विकास का स्वर्णयुग था । तत्कालीन जन जीवन उत्साह, शूरवीरता और उल्लास से परिपूर्ण था । 'सिद्धहेम' में गुजरात की इस समृद्ध अवस्था का सजीव वर्णन मिलता है । सिद्धराज का समय समृद्धि के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच चुका था । देश-विदेशों से व्यापार जल-स्थल मार्गों से होता था । वीर धवल और वीसलदेव जैसे राजाओं द्वारा अभिवृद्धि तथा विमल, वस्तुपाल और तेजपाल जैसे मन्त्रियों का स्थापत्य और उच्चकोटि के साहित्य-सृजन में प्रोत्साहन, देलवाड़ा, शत्रुंजय, गिरनार, पाटन, सिद्धपुर, वडनगर और मोढेरा के कलापूर्ण मन्दिर तथा हेमचन्द्राचार्य का साहित्यिक योगदान इसके द्योतक है । गुजरात का अन्तिम हिन्दू शासक कर्ण बघेला था । तत्पश्चात् गुजरात में मुसलमानी सत्ता का आविर्भाव अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के साथ ही अर्थात् सन् १२९८ ई० में होता है ।[१]

२. मुसलमान-युग :

हिन्दू-शासन को गुजरात से छिन्न-भिन्न करने के लिए अलाउद्दीन ने अपने भाई उलुगखाँ और सेनापति नसरत खाँ को एक विशाल सेना सहित भेजा । कर्ण बाघेला उस समय गुजरात का सर्व सत्ताधारी शासक था ।[२] अनहिलवाड़ उसकी राजधानी थी ।

---

१. A History of Gujarat, Vol. I. Page 1.

२. -do- Page 4.

`कान्हड़दे प्रबन्ध` में उस समय की राजनीतिक व्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था का भी अजीव वर्णन मिलता है । मुस्लिम आक्रमणकों ने केवल अनहिलवाड़ को ही नष्टभ्रष्ट नहीं किया अपितु सोमनाथ पर भी अपना आधिपत्य जमाकर उसे खूब लूटा । नसरत खाँ खंभात की ओर बढ़ा जो अपने समय का समृद्ध एवं सम्पन्न बन्दरगाह था । उसने खंभात के व्यपारियों को लूट कर अतुल धनराशि हस्तगत की । गुजरात की इस लूट में अलाउद्दीन को अपार धन के साथ दो अमूल्य रत्न भी हाथ लगे — :१: कर्णघेला की पत्नी — `कमलादेवी` । :२: खंभात का गुलाम `मलिक काफूर` । मुसलमानी आक्रमण से घबराकर कर्णघेला अपनी पुत्री देवलदेवी सहित दक्षिण की ओर भाग गया और देवगिरि के राजा रामचन्द्र : रामदेव : की शरण ली । अलाउद्दीन का दूसरा युद्ध देवगिरि पर भी हुआ जिसके फलस्वरूप कर्ण की मृत्यु हुई तथा देवलदेवी का विवाह अलाउद्दीन के पुत्र खिज्रखाँ से कर दिया गया ।[१] इस प्रकार तेरहवीं शती के अन्त में गुजरात की स्वतन्त्र सत्ता टूटती हुई प्रतीत होती है तथा मुसलमानी सत्ता की निरंकुशता का काल प्रारम्भ होता है । अलाउद्दीन खिलजी की गुजरात विजय : सं.१३५३ : से गुजरात के इतिहास में एक नया परिच्छेद जुड़ता है और सूबेदारी शासन व्यवस्था कायम होती है । विजय के तीन वर्ष पश्चात् ही अलाउद्दीन ने अपने साले मलिक अंजार : अलप खाँ : को गुजरात का गवर्नर बनाकर भेजा । इस प्रकार के सूबेदारी शासन तक :ई० सन्० १४११: पाटन : अनहिलवाड़ : गुजरात की राजधानी रही । तैमूरलंग के आक्रमण से दिल्ली का शासन अत्यन्त दुर्बल बन गया । फलत: गुजरात के नियुक्त सूबेदारों तथा दिल्ली की निरंकुश सत्ता के बीच संघर्षों की ज्वाला अचानक धधक उठी और गुजरात का सूबेदार जफरखाँ स्वयं सुल्तान बन बैठा तथा मुजफ्फर खाँ की पदवी धारण की ।

---

१. A History of Gujarat - Vol. I. Page: 4.

इसरूमें हम गुजरात में मुस्लिम सत्ता का स्थायित्व मुजफ्फर खाँ के समय से देख सकते हैं ।[१] वह गुजरात का अन्तिम नियुक्त सूबेदार और पहला मुसलमान शासक था । इन शासकों ने अपनी निरंकुश सत्ता को जमाने के लिए अनेक मठ और मन्दिरों को तोड़ा और उनकी जगह मस्जिद और मीनारें खड़ी कीं ।[२] चौदहवीं शती के अन्त तक मुसलमानों ने गुजरात की भूमि को मस्जिद और मीनारों से सुसज्जित कर दिया, जिनमें खंभात की जामी मस्जिद : सन्० १३२५ :, ईदगाह : सन्० १३८१ :, भड़ौच की जामी मस्जिद : सन्० १३२६ : और धोलका की जामी मस्जिद : सन्० १३६१ : उस समय की प्रसिद्ध मस्जिदों में से हैं । माण जैठवा का महल जामी मस्जिद के रूप में बदल दिया गया । यही नहीं सन्० १४०२ में जब हिन्दुओं ने सोमनाथ की आराधना में अपना विश्वास पुन: जागृत किया उस समय मुजफ्फर खाँ ने सोमनाथ पर दुबारा युद्ध किया और मन्दिर के टुकड़े-टुकड़े करवा दिये गये । विशाल मन्दिर को इस तरह भूमि धूसरित कर उस जगह पर मस्जिद बनवायी गयी ।[३] स्वतन्त्र मुस्लिम शासकों की

---

१. 'Like all successful founders of great dynasties, the new ruler was an active and successful general and we find him waging incessant compaignos not only against the Rajput rulers of Gujarat and Kathiawar but also against the neighbouring muslim ruler in Malwa.'
- A History of Gujarat Vol.I, Page 53.

२. 'In 1415, Sultan Ahmad attacked the holy town of Siddhpur on the Saraswati in North Gujarat where he broke the images in the celebrated Temple of Rudramahalaya and turned the building into a mosque.'
- A History of Gujarat Vol.I. Page 61-62.

३. A History of Gujarat Vol.I. Page 55.

क्रूर सत्ता के बीच गुजरात प्राय: एक शती तक पिसता रहा। सुल्तान बहादुरशाह : सन्० १५२५-३६ : ने स्थानीय अमीरों की जगह विदेशी लोगों को विशेष आश्रय देकर पतन के बीज अंकुरित कर दिये जिनका फल महमूदशाह तृतीय : सन्० १५३६–५४ : को भोगना पड़ा। अमीरों ने अन्तिम सुल्तान मुजफ्फर शाह की दुर्बलता का लाभ लेकर सल्तनत को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त कर बाँट लिया।[१] इनकी धर्म कट्टरता से हिन्दुओं की स्थिति दयनीय होने लगी। धर्म की रक्षा के लिए लोग अन्यान्य जगहों में जाकर बसने लगे और जो स्थानान्तर नहीं कर सके उन्होंने अपने चारों ओर परधर्मियों के अत्याचारों से बचने के लिए कट्टर रीति-रिवाज, सम्प्रदाय, उपसंप्रदाय और रूढ़िवाद के कठिन घेरे डाल लिए।[२] गुजरात की हतप्राण चेतना को जाग्रत बनाने में नरसिंह, मीरां तथा प्रेमानन्द की वाणी का अपूर्व योगदान है।[३]

३. शान्ति काल :

अकबर की गुजरात-विजय : सन्० १५७२ : से नित नये विद्रोह की आग शान्त हो गयी और उस दिन से गुजरात की स्वतन्त्र सल्तनत का अन्त आ गया तथा सम्पूर्ण गुजरात केन्द्रीय शासन के आधीन हो गया।[४] इस प्रकार मुगल सत्ता के अधीनस्थ सोलहवीं एवं सत्रहवीं शती का गुजरात शान्तिमय वातावरण का अनुभव कर सका। अकबर ने गुजरात की आर्थिक परिस्थिति को सुधारने का कार्य राजा टोडरमल को सौंपा। उसने जमीन की पैमाइश कराके लगान का नया प्रबन्ध किया जिससे इस सूबे से शाही खजाने में पचास लाख रुपया सालाना आने लगा। राजा टोडरमल

---

१. डॉ. छोटूभाई नायक – गुजरात एक परिचय, पृ० १०२।
२. पाटल : संत विशेषांक : मई जून, १९५५, पृ.२२०–२२१।
३. आदि वचनो – डॉ. क.मा.मुंशी, पृ. ८०।
४. A History of Gujarat Vol. I. Page 527.

के बाद इस सूबे का प्रबन्ध शिहाबुद्दीन अहमदखाँ को सौंपा गया जो टोडरमल की ही तरह योग्य हाकिम था ।[1] शाहजहाँ और औरंगजेब जैसे प्रखर मुगल सम्राट अपने पूर्वकाल में गुजरात के सूबेदार रह चुके थे । गुजरात के प्रति औरंगजेब का विशेष आकर्षण था । अपने एक पत्र में उसने इस प्रकार का उल्लेख भी किया है कि — 'गुजरात हिन्दुस्तान का आभूषण है ।[2] गुजरात में मुगल बादशाहों की तरफ से कुल ५६ सूबेदारों की नियुक्ति हुई जिनमें अज़ीज़ कोका, अब्दुल रहीम खानखाना और दारा शिकोह की सूबेदारी गुजरात के लिए विशेष सुखकर प्रतीत हुई । गुजरात की विशिष्ट कारीगरी को देख जहाँगीर भी रीझ उठा था ।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि मुगल बादशाहों को गुजरात के प्रति विशेष सहानुभूति थी । सूरत उस समय का सबसे बड़ा बन्दरगाह था जहाँ दुनियाभर के व्यापारी आते-जाते । सूरत वस्तुत: मुगल-जमाने का 'बाबुल मक्का' और 'बंदरमुबारक' था ।[4] राजनीतिक शान्ति एवं आर्थिक सम्पन्नता के बीच जो साहित्य रचा गया वह अधिकांश में इहलोक को छोड़ परलोक की कामना में रचा गया । गुजरात के समर्थ ज्ञानी कवि अखा का अभ्युदय इसी युग में हुआ ।

४. संक्रान्तिकाल :

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् सरदारों, सूबेदारों और मराठों की स्वेच्छाचारिता खिल उठी । शान्ति का वातावरण पुन: विक्षुब्ध हो उठा । विदेशी व्यापारी गुजरात को अपनी

---

१. डॉ. ईश्वरी प्रसाद — भारत का इतिहास भाग-२, पृ. ६४ ।
२. रुक्आते आलमगीरि : फारसी :
३. मिरात-इ-अहमदी, भाग-२, पृ. १६२-१६३ : फारसी :
४. गुजरात एक परिचय, डॉ. छोटूभाई नायक — पृ. १०८ ।

व्यापार-कुशलता सिखा रहे थे जबकि शिवाजी की बढ़ती हुई सत्ता सूरत को तीन बार लूट चुकी थी । सन् १७७२ में बड़ौदा में गायकवाड़ी शासन कायम हो गया और गुजरात तथा सौराष्ट्र से चौथ और सरदेशमुखी आदि कर नियमित रूप से वसूल किये जाने लगे । सन् १८१८ ई० में गुजरात से मराठों की सत्ता का अन्त आ गया तथा कंपनी सरकार की सत्ता सर्वोपरि बनी । इस समय भी महाराजा और ब्रिटिश रेसिडेन्ट के बीच अनेक झगड़े होते रहते । ब्रिटिश सरकार ने सौराष्ट्र, कच्छ तथा गुजरात के पालनपुर, बड़ौदा, महीकांठा, रेवाकांठा, खंभात, नारुकोट, धरमपुर, वांसदा तथा सचीन राज्यों में एजेन्सी-प्रथा कायम की । सन् १८५७ की विप्लव की चिनगारियों से पूर्व ही गुजरात में सांस्कृतिक क्रान्ति शुरू हो चुकी थी । ई० स० १८२६ से १८५६ के बीच शिक्षा, साहित्य और सामाजिक क्रान्ति का नवीन युग सन् १८५७ के बाद ही शुरू हुआ ।

सामाजिक एवं धार्मिक पृष्ठ भूमि :

सोलहवीं शती का उत्तरी भारत निर्गुण को छोड़ सगुण की ओर प्रवृत्त हो रहा था जिसके प्रचार एवं प्रसार में उत्तर तथा दक्षिण के विविध धारा-प्रवाहों को विशेष सुयोग एवं गति मिली । शंकर ने जिस निरूपाधि निर्गुण ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की थी उसकी अवहेला में रामानुज से लेकर श्री वल्लभाचार्य तक जितने भक्त, दार्शनिक या आचार्य हुए उन सबने शंकर के मायावाद और विवर्तवाद से पीछा छुड़ाना चाहा । विक्रम की पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में वैष्णव धर्म का आन्दोलन देश के एक छोर से दूसरे छोर तक हुआ जिसके प्रधान प्रवर्त्तकों में स्वामी वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ तथा चैतन्य थे ।[१] सगुण भक्ति के प्रचार में विट्ठलनाथजी ने

---

१. 'Thus Bhakti grew into the most creative force in the country, bringing joy to every home and re-vitalising the Aryan culture.
The new bhakti impulse spread from vrindāvan into Gujarāt in the sixteenth century, and, perhaps, the two great bhakti poets of Gujarāt, Mirañbai and Narsinh Mehtā, were influenced by the sadhus and bhaktas of this sect.'

- Gujarat and its literature - Page 179
by Dr. K.M.Munshi.

गुजरात की ओर छ: बार भ्रमण कर : सं.१६१३ से सं.१६३८ : अनेक वैष्णव मन्दिरों की प्रतिष्ठा की । द्वारका तथा डाकोर के विशाल मन्दिर वैष्णव धर्म के प्रमुख केन्द्र बन गये जो गुजरात के प्राय: दो सीमा क्षेत्रों को स्पर्श करते हैं । जैन मत से प्रभावित गुजरात का पूर्व जनमानस वैष्णवमत के प्रपत्तिवाद, नित्यलीला तथा माधुर्यभाव की ओर सहज ही आकर्षित हो गया यद्यपि इससे पूर्व भागवत, विष्वमंगल और जयदेव के ग्रंथ गुजरात में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे । जयदेव से भी पूर्व राधा-कृष्ण की उपासना अपभ्रंश ग्रन्थों में मिलती है । इनके कुछ उदाहरण हेमचन्द्र के व्याकरण में भी दृष्टिगत होते हैं । पुष्टिमार्ग में सेवा प्रकार का निदर्शन गुजरात के व्यापारियों के लिए अधिक अनुकूल साबित हुआ ।[1] इस प्रकार नरसिंह एवं मीरां की सगुण भक्ति में सम्पूर्ण गुजरात एकबार निमग्न हो गया और ज्ञानाश्रयी-धारा की अविच्छिन्न कड़ी जो कबीर, पीपा, रैदास और नाथपंथी कापालिकों से जुड़ी हुई थी — टूटती सी दिखायी देने लगी । यहाँ तक कि मांडण और धनराज की कविता भी इस क्षेत्र में कोई विशिष्ट प्रभाव नहीं छोड़ पाती । उत्तर की इस सगुण साधना ने गुजरात के आँचल को ब्रज-साहित्य के कुसुंबी रंगों से रंग दिया । अठारहवीं शती में इस सम्प्रदाय के प्राय: बारह कवि हुए जिनमें दयाराम सर्वश्रेष्ठ थे और जो संभवत: वैष्णव धारा के अन्तिम शिरोमणि थे जिन्होंने नरसी की इस परम्परा को काव्यत्व के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया ।

इस रूप में गुजरात का समस्त मध्ययुगीन साहित्य धर्म भावना से ओतप्रोत है । जैन, वैष्णव, स्वामीनारायणी, संत मतावलंबी और सूफी कवियों की समस्त रचनाओं का आधार धर्म भावना है । धर्म से अलग करके मध्यकालीन साहित्य को नहीं देखा जा सकता । इस धर्म प्रधान साहित्य में ज्ञान-वैराग्य विषयक काव्यों की बहुलता और जीवन के उल्लास की न्यूनता है ।[2]

वस्तुत: गुजरात की निर्गुणधारा के उद्भव एवं विकास में राजनीतिक परिस्थितियों से कहीं अधिक धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का योग है ।

---

१. गुजराती साहित्य का इतिहास - श्री.जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दवे, पृ.६७ ।
२. गु. हि. से. - डॉ. अम्बाशंकर नागर । पृ. ३० ।

जिस राजनीतिक उथल पुथल में उत्तरीभारत की निर्गुण साधना के बीज अंकुरित हुए इस प्रकार की कोई विकट परिस्थिति गुजरात के इतिहास में प्राय: उपलब्ध नहीं होती । गुजरात के सूबेदार सदा दिल्ली की ओर अपनी दृष्टि जमाते रहे और दिल्ली की सल्तनत किस तरह उनके हाथ में आवे, बस इसी के स्वप्न देखते रहे । अकबर और जहाँगीर के काल में गुजरात की जनता समृद्धि के शिखर पर थी । आर्थिक दृष्टि से वह सम्पन्न थी । 'मिरात-इ-सिकन्दरी' तथा विभिन्न विदेशी यात्रियों के कथन इस बात के प्रमाण हैं कि सूरत, खंभात और अहमदाबाद उस समय के प्रमुख व्यापारिक नगर थे । इब्नबतूता ने खंभात को स्थापत्य-कला का बेजोड़ नमूना बताया है ।[१] तथा 'मिराते अहमदी' के अनुसार अहमदाबाद की कारीगरी की प्रशंसा ईरान, तूरान, मिस्र और सीरिया आदि विदेशों तक फैली हुई थी ।[२] सूरत मुगल जमाने का सबसे बड़ा बन्दरगाह था जहाँसे विदेशों के साथ माल-सामान का हेर-फेर किया जाता ।[३] मुगल बादशाहों द्वारा जहाँ मंदिरों को तोड़कर मस्जिदें खड़ी करने के उल्लेख मिलते हैं वहाँ उनके द्वारा मन्दिरों, धर्म-संस्थाओं एवं हिन्दू जातियों को जागीरें देने के दृष्टान्त भी पाये जाते हैं ।[४] मुसलमान बादशाहों में धर्म कट्टरता अवश्य रही किन्तु गुजरात की प्रजा के प्रति उनकी हमदर्दी भी थी । इस प्रकार मुगलकाल तक आते आते सम्पूर्ण गुजरात में शान्ति एवं समृद्धि फैल चुकी थी । मुस्लिम जाति उत्तरभारत की भाँति गुजरात में उखड़ उखड़ नहीं गयी अत: यहाँ हिन्दू-मुस्लिम दो भिन्न जातियों में इस प्रकार का वैमनस्यभी नहीं

---

१. 'This city is one of the finest there in regard to the excellence of its construction and the architecture of its mosque.'
- A History of Gujarat Vol.I. Page 24.

२. मिराते अहमदी पृ.७ अली मोहम्मद खान ।

३. गुजरात सर्व संग्रह पृ.२५७ ।

४. Imperial Mughal Farmans in Gujarat (Plate III) By Khan Bahadur M.S.Commissariat.

पाया जाता । पंद्रहवी शती की सतपंथी : इमामशाही : तथा पीराणा प्रभृति मुसलमान मिशनरियों ने अपनी धार्मिक एवं नैतिक कट्टरता को त्याग कर गुजरात की हिन्दू जाति के साथ ऐसा अपनत्व जोड़ लिया कि वे रीति-नीति में हिन्दुओं से शायद ही कहीं भिन्न प्रतीत होते हों ।[१] वस्तुत: गुजरात की निर्गुण साधना के अन्त: स्त्रोत में जिन प्रमुख प्रेरक परिस्थितियों का बल है, वे इस प्रकार हैं :

१. कठोर सामाजिक एवं धार्मिक बन्धन : आन्तरिक प्रभाव :
२. उत्तर तथा दक्षिण भारत के सन्तों का सम्पर्क एवं प्रभाव : बाह्य प्रभाव :
३. परिस्थितिजन्य व्यक्तिगत प्रभाव ।

कठोर सामाजिक एवं धार्मिक बन्धन :

गुजरात के सन्तों में न तो सगुण निर्गुण के खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति ही है और न हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा ही, बल्कि ज्ञान के प्रकाश में उस आत्मा को खोजने का प्रयास है जो सामाजिक रूढ़ियों एवं धार्मिक बन्धनों के बीच भटक गयी थी । गुजरात का समस्त मध्यकालीन साहित्य वस्तुत: धार्मिक संस्कारों से आबद्ध था । परलोक एवं परमेश्वर की कामना करने वाले लोगों को इस युग के सन्तों ने ज्ञान-गंगा के किनारे बैठ आत्मा के दर्पण पर छायी हुई धूल को धोया और अनुभव की प्रयोगशाला में परमात्मा के साक्षात्कार करने का आदेश दिया । कबीर के दो सौ वर्ष बाद उसके जैसा ही प्रखर व्यक्तित्व अखा के नाम से गुजरात में

---

१. 'The spirit of caste and its regulations still dominate the customs, the ideas, the prejudices and practically the whole life of the members of the community who are thus in their manners and dress hardly distinguishable from the Hindus.'

- A History of Gujarat. Vo. I. Page 139.

अवतरित हुआ । जबकि सत्रहवीं शती का उत्तरभारत भक्ति को छोड़ रीति को अपना रहा था, गुजरात समृद्धि के बीच भटकी हुई आत्मा को ढूँढ रहा था । इस युग के सन्तों की वाणी धर्म के नासूरों को चीर कर समाज की सड़ांध को निकाल फेंकने में नश्तर का काम करती है । अखा और भोजा के चाबखा समाज पर इसीलिए बरस पड़ते हैं । अखा के समय में : सं. १६४७-१७१० : साम्प्रदायिक आचार्यों तथा धर्म-गुरुओं का वर्चस्व इतना अधिक बढ़ चुका था कि मन्दिरों और मठों में धर्म के नाम पर घोर वैभव-विलासिता और अनाचारों को देखकर भी जनता उसका प्रतिकार नहीं कर पाती थी । सम्प्रदायों और दर्शनों का वितंडावाद आये दिन होता रहता था । वैष्णव एवं शैव सम्पदायों का परस्पर विद्वेष सामान्य जनता के लिए विकट प्रश्न बन चुका था । इस रूप में `धन हरे धोखो नव हरे` जैसे दम्भी गुरुओं, कर्म से डर कर भस्म रमाने वाले सन्यासियों, कथा-भागवत सुनाकर आजीविका प्राप्त करने वाले पोंगे पंडितों, विलासिता के गर्त में में डूबे हुए धर्म के ठेकेदारों तथा गद्दीपतियों को अखा ने इसी लिए आड़े हाथों लिया है ।। वर्णभेद की समस्या तो नरसिंह मेहता के काल से ही विकट होती चली आ रही थी । काशी जाकर गंगा में डुबकी लगा पाप धोने वाले तीर्थ यात्रियों एवं पुण्यात्माओं की कमी अखा के काल में नहीं थी । लोगों का विश्वास ज्योतिष विद्या तथा गृह दशाओं में बढ़ता जा रहा था अत: कर्मकाण्डियों की पाँचों अंगुलियाँ घी में थीं । गुजरात की भोली प्रजा उनके बताये हुए विधानों का अन्धनुसरण करती जा रही थी । इतिहासकारों की दृष्टि प्राय: इस प्रकार की सामाजिक विपन्नता, लुब्धता एवं अध: पतन की ओर नहीं पड़ी थी जिसे सन्तों ने बिना किसी हिचकिचाहट के साफ-साफ अभिव्यक्त किया है । कठोर सामाजिक एवं धार्मिक बन्धनों को तोड़ मुक्त

वातावरण में इन्होंने ज्ञान की स्वगंगा बहायी है । इन सन्तों के काव्य में हमें सर्वत्र उस घुटी हुई जर्जर सामाजिक एवं धार्मिक अवस्था के दर्शन होते हैं जिसकी नींव में युगों से दीमक लग चुकी थी । समाज में प्रवर्तित इस प्रकार की सभी रूढ़िवादी मान्यताओं को उखाड़ फेंकने का बीड़ा युग के इन सजग पहरेदारों ने उठाया और सत्य के शीशे में इन्होंने धर्म की प्रतीति करायी ।

गुजरात की ज्ञानवादी धारा को जिन तत्कालीन धार्मिक प्रवाहों ने विशेष रूप से प्रभावित किया वे इस प्रकार हैं :

जैन-मत का प्रभाव :

महाराष्ट्र में जिस प्रकार बौद्धमत का अत्यधिक प्रभाव दिखायी देता है,[१] ठीक उसी प्रकार गुजरात में जैनमत का अत्यधिक प्रचार पाया जाता है । यद्यपि प्राचीन काल में सौराष्ट्र की राजधानी वल्लभी बौद्ध धर्म का केन्द्र थी और प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य शान्तिदेव ने गुजरात में बौद्ध धर्म का प्रचार किया था ।[२] किन्तु ग्यारहवीं शती तक जैनमत के व्यापक प्रभाव में इसके अवशेष विलीन हो गये ।[३] गुजरात का अपभ्रंशकालीन साहित्य अधिकांश में जैन-कवियों द्वारा रचित है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस युग के जैनेतर कवियों ने भी उच्चकोटि का साहित्य लिखा होगा, किन्तु दुर्भाग्यवश वह अनुपलब्ध है । जैनमत क्योंकि राज्य द्वारा प्रतिष्ठित था, अत: उसका अधिकांश साहित्य सुरक्षित रह सका । सत्रहवीं शती के अन्त तक हमें

---

१. हिन्दी को मराठी सन्तों की देन — पृ.५६ - ५७ ।

२. गु. हि. से. डॉ. अम्बाशंकर नागर पृ. २६ ।

३. "When Mularaja came to the throne of Patan, Buddhism had long disappeared, and jainism had no important following. But the immigration of the osuals, porvads and other important communities gave Jainism an important position.
- Gujarat and Its Literature Page. 126.

जैन-साहित्य के पल्लवित पुष्प दिखायी देते हैं । विनय सुन्दर, समय-सुन्दर, ऋषभदास, आनंदघन तथा चिदानंद प्रभृति जैन-साधुओं द्वारा गुजराती साहित्य की अनन्य सेवा हुई है, जिनमें ऋषभदास, आनंदघन और चिदानंद द्वारा रचित उच्चकोटि की हिन्दी रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं । ये साधू अखा के सम-सामयिक भी थे । अत: इनकी वाणी कहीं-कहीं अखा की ज्ञानाश्रयी भावधारा से प्रभावित-सी दीख पड़ती है । सन्तों की भाँति आनंदघन के पदों में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, ब्रह्मरंध्र, अनहदनाद, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, अजपाजाप आदि योग-युक्तियों की चर्चा है । ज्ञान, वैराग्य, भक्ति प्रेम और विरह से संप्रिक्त इनके पदों में सन्तों की ही उत्कट वेदना एवं गहन अनुभूति प्रतीत होती है । फिरभी इनका रहस्यवाद निर्गुनियों एवं सूफियों से भिन्न है । इनका अध्यात्म जैन धर्मानुकूल है ।[1] जैन-दर्शन की अभिव्यक्ति में इन्होंने सन्तों की रूपकात्मक शैली का अनुसरण किया है । आनंदघन की बहोतरी के पश्चात् जैन-साहित्य में चिदानंद की बहोतरी का स्थान अप्रतिम है । जैन देरासरों में इनके पद बड़े चाव से गाये जाते हैं । अखा के प्राय: दो सौ वर्ष पश्चात् लिखी गयी चिदानंद की वाणी पर अखा की शैली का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । इनके कुछ पद अखाकृत 'संतप्रिया' की शैली से कितना मेल खाते हैं, इसके प्रमाण में इन दोनों के एक-एक पद देखिए :-

अखा :[2] 'लंठ कहो कोई, भंड कहो, पाखंड कहो, कोई कहो भिखारी ।
सुजन कहो, दुरिजन कहो, चोर कहो, कोई कहो ब्रह्मचारी ।।

---

१. गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रन्थ- डॉ. अम्बाशंकर नागर पृ. ३६ -३७ ।
२. 'संतप्रिया' - ८२ ।

कोउ को पाव टके नहीं ताहां, जाहां जाये कीनी अखेजु
पधारी ।
जीनु देख्यो जैसे तीनुं तैसो धायो बोहोत रहे जु बीचारी,
बीचारी ।

चिदानंद :

ज्ञानी कहो ज्युं अज्ञानी कहो कोई,
ध्यानी कहो मत मानी ज्युं कोई ।
जोगीन हो भावे भोगी कहो कोई
जाकुं जिश्यो मन भासत होई ।
दोषि कहो निरदोषि कहो –
पिंड-पोषि कहो कोई औगुन जोई ।
साधु-सु संत महंत कहो कोई
भावे कहो निरगंथ पियारे ।
चोर कहो चाहे ढोर कहो कोऊ,
सेवक हो कोऊ जान दुलारे ।
धारे सदा समभाव चिदानंद,
लोक कहावत सु नित न्यारे ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १७ वीं शती के पश्चात् जैन-कवियों ने व्रजभाषा तथा खड़ी बोली में भी असाम्प्रदायिक एवं बोधप्रद पदों की रचना की है । इन कवियों की कविता में भी वही मस्ती, वही प्रेम, वही अनासक्ति और रूढ़ियों का त्याग, वही अन्तर्मुखी प्रवृत्ति और वही संयम, शील और सदाचार का उपदेश है, जो ज्ञानमार्गी निर्गुण सन्तों ने दिया है ।[१] गुजरात के ऐसे हिन्दी-सेवी जैन कवियों में ऋषभदास, आनंदघन, विनय विजय, यशोविजय, किशनदास और चिदानंद प्रमुख हैं ।

---

१. गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रंथ– डॉ. अम्बाशंकर नागर । पृ. ६ ।

जिस प्रकार सत्रहवीं शती एवं बाद के जैन साधुओं पर इस प्रकार की निर्गुण भावधारा का सहज प्रभाव पड़ा था, ठीक उसी प्रकार गुजरात की सन्तवाणी की पृष्ठभूमि में जैन-दर्शन के आचार पक्ष का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है । श्री सुरेश जोशी ने अपने अधिनिबन्ध में जैनमुनि रामसींग के `पाहुड़-दूहों` के साथ अखा के छप्पों की विशद् तुलना की है ।[१.] इन सन्तों में दान, तप, शील और सत्याचरण की जो भावना मिलती है, वह जैन-साधना की ही देन है । जैनमत में परिपुष्ट सत्य और अहिंसा का चरमोत्कर्ष एवं समुन्नत तत्त्व हमें गाँधी में दिखायी देता है । गुजरात के सांस्कृतिक जीवन के मूल में भी जैनमत का अपूर्व योगदान है । यहाँ का समझौतावादी अहिंसामूलक शान्त स्वभाव भी इसीकी देन है ।[२.] फिरभी, सन्तों के साधनापक्ष को जैनमत ने उतना प्रभावित नहीं किया जितना जैनसाहित्य ने । अभिव्यक्ति के क्षेत्र में गुजरात के सन्तों ने उन समस्त काव्य प्रकारों को अत्यन्त सहजतापूर्वक अपना लिया है जो अपभ्रंश-काल के जैन-साहित्य में प्रमुखरूपेण उपलब्ध होते हैं । इन काव्य-प्रकारों की चर्चा प्रस्तुत अधिनिबन्ध के षष्ठ परिच्छेद में की गयी है ।

वैष्णव धर्म का प्रभाव :

प्राय: दसवीं शती से लेकर पंद्रहवीं शती तक वैष्णव मत का प्रचार गुजरात में अत्यधिक हुआ ।[३.] विष्णुपूजा तथा भागवत की प्रतिष्ठा गुजरात में गुप्त काल से चली आ रही है ।[४.] वैष्णव धर्म के प्रचारकों में मध्व और निम्बार्क का उतना स्थान नहीं,

---

१. A Critical Edition of Narahari's Jnān Gitā - Dr.Suresh Joshi, M.S.University, Baroda.

२. Gujarat and Its Literature- Dr. K.M.Munshi. Page 126.

३. श्री जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दवे- `गुजराती साहित्य का इतिहास` पृ.६७ ।

४. Gujarat and Its Literature- Dr. K.M.Munshi. Page 124.

जितना वल्लभाचार्य और विट्ठनाथजी का है । वैष्णवतीर्थों में द्वारिका और डाकोर न केवल गुजरात में ही बल्कि समस्त भारत के महान पुण्य-स्थलों में समझे जाते हैं ।

गुजरात के सन्तों की ज्ञानमार्गी शाखा यद्यपि वैष्णव धर्म के अनाचारों के विरोध में खड़ी हुई, किन्तु वैष्णवी विचार धारा का वह नितान्त परित्याग नहीं कर सकी । अखा और मांडण संस्कारों से वैष्णव ही थे । अखा, प्रीतम तथा निरांत की ज्ञानवादी काव्यधारा में प्रेमलक्षणाभक्ति का जो स्वरूप स्पष्ट रूपेण झलकता है वह उनका वैष्णवी संस्कार ही है । प्रीतम, धीरो, निरांत, नरभे तथा अन्य सन्तों ने ब्रह्मलीला का निरूपण कृष्णलीला के आधार पर ही किया है । गुजराती सन्त-काव्य की यह एक ध्यानपात्र विशेषता है । वस्तुत: सोलहवीं शती से लेकर : नरसिंह-युग : दयाराम के समय तक समस्त गुजराती कविता वैष्णवी भावधारा एवं संस्कारों से अनुप्रेरित है । संक्षेप में गुजरात के सन्त-साहित्य पर हम वैष्णव-धर्म का प्रभाव इस प्रकार देख सकते हैं :

१. भागवत का अत्यधिक प्रचार पंद्रहवीं एवं सोलहवीं शती में प्रतीत होता है । अत: सन्तों ने भी भागवत की कथाओं को अपना वर्ण्य विषय बनाया और अपने ढंग पर मौलिक गाथाएँ तैयार कीं । प्रीतम और छोटम इस क्षेत्र में संभवत: सबसे आगे हैं ।

२. साधना के क्षेत्र में सगुण-निर्गुण की समन्वयात्मकता । एक ही भक्त निर्गुण-निराकार : राम : और सगुण - साकार : कृष्ण : की भक्ति करता पाया जाता है ।

३. ब्रजभाषा का प्रचार । सन्तों की भाषा यद्यपि सधुक्कड़ी है फिरभी इसके मूल में ब्रजभाषा का आधिक्य संभवत: इसीलिए है । गुजरात के सन्तों की भाषा में पूर्वीपन

नहीं के बराबर है जबकि इसकी प्रकृति ब्रजभाषा और खड़ी बोली के अधिक निकट है ।

४: गुजरात की भक्ति-साधना का स्वरूप प्राय: सगुण से निर्गुण की ओर है । नरसी और मीरां के काव्य में अंकुरित निर्गुण-साधना के बीज हमें अखा में पूर्ण रूपेण प्रस्फुटित होते हुए प्रतीत होते हैं । यही कारण है कि उत्तरभारत में जहां हिन्दी की रीति-युगीन काव्यधारा प्रबल वेग से प्रवाहित हो रही थी, उससे बिल्कुल भिन्न गुजरात में उस समय निर्गुण काव्य धारा का अविरल प्रवाह फूट पड़ा था ।

स्वामीनारायण सम्प्रदाय का प्रभाव :

१८ वीं शती के पश्चात् वल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव क्षीण होने लगा और नवीन संस्कारों के परिवेश में स्वामीनारायण सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ । तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो चुकी थी । राजाओं के राज ध्वंस होने लगे और अंग्रेजी सत्ता की नींव जमने लगी । जर, जमीन और जोरू पर आधिपत्य की भावना प्रबल होती जा रही थी । डॉ. क.मा.मुंशी के कथनानुसार 'मारे तेनी तरवार, जीते तेनो देश, वरे तेनी नहीं पण हरे तेनी स्त्री'—उस समय की कहावत बन चुकी थी । भौतिकता और विलासिता के इस नग्न-नृत्य में व्यभिचार, रिश्वतखोरी, हत्या, डाकेजनी और विश्वासघात की भावना लोगों के दिलों को बढ़ावा दे रही थी । समाज की इस विपन्नावस्था से लाभ उठाकर विभिन्न सम्प्रदायों के संत, महंत और वैरागी समाज पर अपना प्रभाव जमाने में प्रयत्नशील थे । संक्षेप में औरंगजेब की मृत्यु के बादका एक पूरा काल-खण्ड अराजकता, अव्यवस्था और असुरक्षा का युग था । समाज में चरित्र भ्रष्टता दिन दिन विकसित होती जा रही थी । इस प्रकार की सभी कुरीतियों को दूर करने के हेतु सं.१८५६ के

आसपास स्वामीनारायण सम्प्रदाय का अभ्युदय हुआ जिसे हम एक रूपमें वैष्णव धर्म का ही परिष्कृत, परिमार्जित एवं परिनिष्ठित संस्करण मान सकते हैं । इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी सहजानंद थे, जिन्होंने गुजरात की लड़ाकू एवं विभ्रम जातियों को अपने सदुपदेशों से प्रभावित कर चरित्र-निष्ठता का पाठ सिखाया । पंथ के इस प्रवर्तक ने सुखभोग के सामने कड़क प्रतिबंध लगाये तथा आचार-विचार की कथनी एवं करनी की एकता पर बल दिया । इस सम्प्रदाय का मूल मन्त्र है— 'भक्ति, भक्त वामें नहिं अन्तरा ।' सैद्धान्तिक दृष्टि से इसमें रामानुज और वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का अपूर्व समन्वय हुआ है । स्वामी सहजानंद स्वयं अपने मत को श्री सम्प्रदाय के अन्तर्गत मानते थे । रामानुज का विशिष्टा द्वैतवाद उन्हें विशेष मान्य था । सहजानंद स्वामी की प्रेरणा से इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत संस्कृत, गुजराती और हिन्दी के अनेक सुकवि हुए जिनमें से प्रमुख हैं— मुक्तानंद, ब्रह्मानंद, प्रेमानंद, निष्कुलानंद, भूमानंद, देवानंद, दयानंद और मंजुकेशानंद । ये सभी कवि संगीत के जानकार थे जिनकी वाणी 'अष्टछाप' के कवियों से किसी माने में उतरती हुई नहीं, यद्यपि ये सभी अहिन्दी-क्षेत्र के भाव-प्रवण कलाकार थे । इनके भावोन्मत्त अन्तर से फूट पड़ने वाली वाणी वैराग्यजनित शुष्क भावना के पट को भी रसमय बनाये रखती है और इस प्रकार शुष्कता में भी रसज्ञता का निरूपण इनकी विशिष्ट देन है । साधना के क्षेत्र में इनकी सबसे बड़ी देन है — चरित्र निष्ठता तथा जीवन में दृढ़ आत्म विश्वास का जागरण ।

सारांशतः यह सम्प्रदाय वैष्णव सम्प्रदाय होते हुए भी संत भावधारा को पोषित करने में सहायक हुआ है । इसके मूर्द्धन्य कवियों ने जहाँ एक ओर सहजानंद स्वामी का गुणगान किया है वहाँ दूसरी ओर नीति, वैराग्य, ज्ञान एवं भक्ति की कविता भी की है ।

उत्तर तथा दक्षिण भारत के सन्तों का सम्पर्क एवं प्रभाव :

श्री शंकराचार्य का अद्वैतमत क्योंकि शुष्क था, इसलिए भक्तिधर्म को प्रधानता मिली और श्री रामानुजाचार्य तथा निम्बार्क ने भागवत धर्म को प्रोत्साहन देकर इसका व्यवस्थित स्वरूप निश्चित किया। इसके पश्चात् स्वामी रामानंद हुए जिन्होंने संस्कृत की अपेक्षा लोक भाषा प्राकृत में धर्मोपदेश देकर भक्ति के द्वार स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी के लिए खोल दिये। उन्होंने प्राचीन जर्जर परम्पराओं को तोड़ा और रामभक्ति के प्रचार एवं प्रसार में दिग्विजय यात्रा की। इस प्रकार भक्ति का प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित हुआ जिसकी छाया पूर्व तथा पश्चिम में भी स्पष्टरूपेण दिखायी देती है। चौदहवीं तथा पंद्रहवीं शती का सम्पूर्ण गुजरात स्वामी रामानन्द की विचारधारा से प्रभावित है।[1] कबीर, पीपा, रैदास आदि इन्हीं की प्रेरणा के बल थे जिन्होंने अपने मत के प्रचार में गुजरात को विशिष्ट स्थान दिया।

गुजरात की ज्ञानाश्रयी धारा के ज्योतिर्धर दादू, माण्डण एवं अखा उत्तर की इस परम्परा से पूर्णत: प्रभावित हुए थे इसमें सन्देह नहीं। कबीर के पश्चात् सम्पूर्ण सन्त-साहित्य में यदि कोई अद्वितीय रत्न दीख पड़ता है तो वह है अखा। वस्तुत: कबीर का जहाँ विराम है, अखा का प्रारम्भ भी वहीं है। गुजरात में जिस साधना के बीज कबीर ने रोपे थे, उसका पल्लवित स्वरूप हमें अखा में प्रतीत होता है। परवर्ती सन्तों में धीरो, प्रीतम, कुबेर प्रभृति सन्त रमते रामानंदी तथा कबीर पन्थ के साधुओं से दीक्षित एवं प्रेरित इसी कोटि के सन्तकवि थे, जिन्होंने संक्रान्ति-काल की बेडौल परिधियों में ज्ञान का दीप जलाया था और कबीर तथा अखा की विचारसरणि को आगे बढ़ाने में अपूर्व योग दिया था।

---

१. मध्यकाल नो साहित्य-प्रवाह — डॉ.क.मा.मुन्शी — पृ. १८ ।

कबीरपंथ की अनेक स्वतन्त्र शाखा प्रशाखाएँ गुजरात में अब भी फैली हुई हैं, जिन्होंने गुजरात की समग्र संतवाणी को प्रच्छन्न रूपसे प्रभावित किया है। गुजरात की ज्ञान-वाणी के विकास में इनका अपूर्व योगदान है जिनकी विशिष्ट चर्चा हमने प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय परिच्छेद में की है। इसी प्रकार महाराष्ट्र की ओर से महानुभाव, दत्त-सम्प्रदाय तथा नामदेव और बंगाल की ओर से चैतन्य महाप्रभु की वाणी का यत्किंचित प्रभाव गुजरात की ज्ञानमार्गी भावधारा पर पड़ा था। इन जंगम-तीर्थों ने ज्ञानगंगा के किसी एक किनारे बैठना समुचित नहीं समझा बल्कि ये तो ऐसे रमते-जोगी थे जिन्होंने अनहद की पुकार हद और बेहद से परे घट-घट में की और अंधकार से आछन्न संकीर्ण सीमाओं को ढहाकर देश की सांस्कृतिकएकता एवं आध्यात्मिक भावना को जागरूक बनाये रखा।

परिस्थितिजन्य वैयक्तिक प्रभाव :

संतकाव्य के प्रवर्तन में तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का जितना हाथ रहा है, उतना ही सन्तों की निजी परिस्थितियों का भी।संघर्षमय जीवन में जिनकी आत्मा सदैव ऊर्ध्वगामी उड़ानें भरती रही ऐसे प्रतिक्रियावादी तथा सत्य-सन्धानी हीमहात्मा अथवा सन्त की संज्ञा से अभिहित किये गये। इस प्रकार की प्रवृत्ति प्रायः सभी भारतीय सन्तों में परिलक्षित होती है। कबीर, नानक और तुलसी किसी न किसी ऐसी ही परिस्थिति के आघात से खिन्न होकर सांसारिकता से विरक्त हुए हैं।

गुजरात के अधिकांश सन्तों की जीवनदिशा को बदलने में सामाजिक धार्मिक परिस्थितियों के साथ साथ उनकी वैयक्तिक परिस्थितियों का भी विशिष्ट महत्त्व रहा है। इनमें से नरसी जैसा कोई स्वमानी अपनी भाभी के वाक्य-बाणों से विद्ध होकर

घरबार छोड़ बैठा है । तो धीरा जैसा कोई सन्यासी आत्मज्ञान की खोज में अपनी पत्नी को त्याग कर महाभिनिष्क्रमण कर बैठा है, अखा जैसा कोई ज्ञानी अपनी धर्म-बहिन के अविश्वास से खिन्न होकर सद्गुरु की खोज में निकल पड़ा है तो त्रिविक्रमानंद जैसा कोई जागरूक विवाह मंडप में 'सावधान !' की पुकार सुनकर गठ-बन्धन को तोड़ संसार से भाग खड़ा हुआ ।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि सन्त काव्य के अध्ययन अनुशीलन में उनकी वैयक्तिक परिस्थितियों का अध्ययन भी नितान्त आवश्यक है । इनकी रचनाओं पर इस प्रकार की मार्मिक घटनाओं का प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है । जीवन की परिस्थितियों से विद्रोह करने वाले इन सन्तों की वाणी भुक्तभोगी आत्मा की सच्ची पुकार है । अनुभव की प्रयोगशाला में सर्वप्रथम इन्होंने स्वयं को कसा, इसके पश्चात् औरों का पथ प्रशस्त किया ।

वस्तुत: सभी सन्त आसक्ति से अनासक्ति और ऐहिकता से पारलौकिकता की ओर अग्रसर हुए हैं । संसार के आघात प्रतिघातों और उनके अपने अनुभवों ने संवेदनशील हृदय और जागरूक आत्मा को ऊर्ध्वगामी बनने की प्रेरणा दी है । ये सभी सन्त जहाँ समष्टि की कामना से समाज-सेवा में प्रवृत्त हुए हैं, वहाँ उन्होंने व्यष्टिमूलक साधना को भी पर्याप्त महत्त्व दिया है । विचार करने पर गुजरात का समस्त सन्त-साहित्य व्यष्टि और समष्टिमूलक साधना का सेतु है ।

०० ०० ०० ००